परम्पराओं से बनता है साहित्य ?

॥ अलौकिक साहित्य ॥

साहित्य का आत्म-तत्व क्या है ? किस तत्व से साहित्य में प्राण फूँके जाते हैं और किस तत्व विशेष से साहित्य का जन्म होता है, इस बात पर जिस जिस विद्वान ने चिंतन-मनन किया है वह वह विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि साहित्य का जन्म उन परम्पराओं से होता है जिन परम्पराओं से उस देश, उस राष्ट्र और उस जाति का सम्बन्ध होता है जिसमें साहित्य जन्म ले रहा है। संसार के सभी राष्ट्रों का जन्म और पालन-पोषण अपनी अपनी परम्पराओं में होता है।

भारत की प्राचीनतम-परम्परा में सबसे पहले ज्ञान, सृष्टि,सत्य, आदर्श,धर्म कर्म और शुद्ध आचरण का आविर्भाव हुआ था। महाप्रजापति ब्रह्मा ने अपनी इसी धर्माचरण का सर्वप्रथम आख्यान किया था जिसे 'श्रुति' कहते हैं। इसी श्रुति में सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के बीज मौजूद थे। इनसे जो ग्रंथ बना, उसे वेद कहते हैं। वेद ही बाद में श्रुति, अन्नाय, छन्दस, ब्रह्म, निगम और प्रवचन कहलाने लगे थे। यह वेद सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हो गये थे क्योंकि जिन ब्रह्मदेव ने सृष्टि बनाई थी उन्हीं ने श्रुति बनाकर अपने सत्रहवे मानस पुत्र चित्रगुप्त से वेदों का लेखन कार्य सम्पन्न करवा लिया था। इस प्रकार वेदों में आध्यात्मिक और दैवी-ज्ञान के सिद्धांत पिरो दिये गये। एक एक वेद से कई कई ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण हुआ। बाद में वेदों को बोधगम्य बनाने के लिये अनेक कथाओं का निर्माण किया गया जिनका संकलन 'पुराण' कहलाया। वेदों के दार्शनिक-तत्वों की व्याख्या करने के लिये उपनिषदों को जन्म लेना पड़ा। यह सम्पूर्ण-साहित्य वेदों को समझाने के लिये रचना पड़ा था। कल्प, ज्यौतिष, छन्द आदि का निर्माण भी इसी प्रकार हुआ था। वेदों से ही वेदों के पूरक साहित्य बने, उपवेद बने जिनमें धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद और अर्थवेद अति प्रसिद्ध हैं। यही वेद के अङ्गपाङ्ग कहलाते हैं। वेद के बाद वेदाङ्ग बने जिनमें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्यौतिष प्रसिद्ध हैं। यहाँ तक की साहित्य को वैदिक-साहित्य कहते हैं जो अलौकिक-साहित्य कहलाता है।

॥ लौकिक साहित्य ॥

अब लौकिक -काव्य का आरम्भ होता है। लौकिक साहित्य का सर्वप्रथम-ग्रंथ महर्षि बाल्मीकि कृत रामायण है। इस बाल्मीकीय-रामायण से पहले बीस पच्चिस रामायणें लिखी जा चुकी थीं जिनमें नारदकृत संवृत्त-रामायण, महर्षि अगस्त्य,

अगस्त्य-रामायण, महर्षि लोमसकृत लोमस-रामायण, मुनि सुतीक्ष्णकृत मंजुल-रामायण, महर्षि अत्रिकृत सौपद्य-रामायण, रामायण-महामाला, शरमङ्ग-ऋषि-प्रणित सौहार्द-रामायण, रामायण मणिरत्न, सौर्य-रामायण, चान्द्र-रामायण,मैन्द-रामायण, स्वायम्भुव-रामायण, सुब्रह्म-रामायण, सुर्वचस-रामायण, देव-रामायण, श्रवण-रामायण, दुरन्त-रामायण और रामायण-चम्पू अति प्रसिद्ध हैं पर काल के कराल-गाल में समा जाने के कारण आज यह उपलब्ध नहीं हैं। यह सभी रामायणें उस परम्परा को निमाती हैं जिस परम्परा में भगवान राम ने मर्यादापुरुषोत्तम का जीवन जीकर दिखलाया था।

रामायण के बाद महाभारत वेदव्यास ने लिखी थी जो वेद की ही परम्परा का सबसे बड़ा महाकाव्य है। गीता इसी का एक भाग है। गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को जिस अलौकिक-ज्ञान का उपदेश देते हैं जो काल की गति से लोप हो चुका था, परम्परा का ही तो ज्ञान था। भगवान बुद्ध ने भी उन्हीं उपदेशों को फिर से जीवंत किया था जो काल ने विलीन कर दिये थे। इस प्रकार कलियुग तक का सम्पूर्ण साहित्य किसी न किसी प्राचीन-परम्परा को पुर्नजीवित रखने के लिये ही रचा गया है।

इस सम्पूर्ण साहित्य शास्त्र में वेदों की जो अन्तरात्मा निहित

है वह इन तीन रुपों में आज भी देखी जा सकती है -

१- कर्मकाण्ड - अर्थात यज्ञ-कर्म, जिससे कि याज्ञिक को या यजमान को इस लोक में अभीष्ट फल की प्राप्ति हो और मरने पर यथेष्ट सुख मिले।

२- ज्ञानकाण्ड - अर्थात् ज्ञातृत्व जिससे कि इहलोक और परलोक तथा परमात्मा के सम्बन्ध में वास्तविक-तत्व तथा रहस्य की बातें जानी जाती हैं जिससे कि मनुष्य के स्वार्थ , परार्थ और परमार्थ की सिद्धि हो सकती है।

३- उपासना काण्ड - अर्थात् ईश्वर-भजन जिससे कि प्राणी ऐहिक एवँ पारलौकिक तथा पारमार्थिक अभीष्टों का साधन कर सकताहै।

आज भी स्वामी दयानन्द के प्रयत्नों से वेदों का जो यथार्थ-स्वरुप सामने आया है उसमें यज्ञ की जगह हवन, तपस्याकी जगह पवित्र जीवन और उपासना की जगह ब्रह्म-चिंतन ने लेकर, वेदों का जो नया स्वरुप जनता जनार्दन में स्थापित किया है वह युग की ही एक पुकार थी। परम्परा की ही पुकार थी। किस देश में परम्परा की पुकार से साहित्य ने जन्म नहीं लिया है, बताइये ?

वैदिक परम्परा ने ही भारत में तंत्र-साहित्य, धर्म-साहित्य, दर्शन-साहित्य, व सम्प्रदाय साहित्य को जन्म दिया है चार्वाक-दर्शन, संङ्कीर्ण-बौद्धमत, आर्हत-दर्शन मीमांसा-दर्शन और वेदांत-दर्शन सभी परम्पराओं के किसी न किसी रुप को रुपायित करते प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्म-मत, शैव-मत, वैष्णव-मत, गाणपत्य-मत, सौरमत, शाक्त-मत सभी किसी न किसी प्राचीन भारत की किसी न किसी परम्परा के प्रतिफल-मात्र हैं। आप मानें या न मानें, चौंसठ-कलायें और दशमहाविद्यायें तक भारतीय परम्परा से जन्मी हैं।

हिन्दी साहित्य भी इसी वैदिक-परम्परा की नींव पर खड़ा हुआ है। जयशंकर 'प्रसाद' की ''कामायनी'' में प्रथम-पुरुष मनु का जीवन चित्रित हुआ है जो कि हिन्दी का सबसे बड़ा आधुनिक-महाकाव्य है। इसी प्रकार ब्रह्मा के सत्रहवें मानस-पुत्र भगवान चित्रगुप्त ''नाम से एक उपन्यास भी प्रकाशित कराया है जो वेद का एक जीवंत- प्रतिमूर्ति बनकर सामने आता है।

॥ उपसंहार ॥

सम्पूर्ण भारतीय साहित्य जिस वैदिक-परम्परा का पालन करता है वह परम्परा विष्णुपुराण के इस श्लोक में पढिये:

'' अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने
यतोहि कर्म्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूम यः
कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसंचयात्।
गायन्ति देवाः किल गीतिकानि
धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते
भवन्तिभूयः पुरुषाः सुरत्वात्।''

महानकवि-राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्त की 'भारतभारती'' इस परम्परा का पालन नहीं करती है ? क्या राष्ट्रीयकवि सोहनलाल द्विवेदी का साहित्य इस परम्परा का प्रतीक-रुप नहीं है ? गीता जिस तत्वज्ञान को खोजकर जनता के आगे रखती है क्या वह प्राचीन ज्ञान-परम्परा का दोष नहीं है ? सुनिये -

'' एवं परम्परा प्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥''

॥ व्याख्या ॥

एक प्रसिद्ध-लेखक ने लिखा है कि '' परम्परा से प्राप्त सम्पूर्ण धन हिन्दू-राष्ट्र के साहित्य में निहित है। ज्ञान, विज्ञान,सदाचार, कलायें , जो कुछ साहित्य के विविध रुपों में विद्यमान है उनके लिये प्राचीन विद्वान तथा ऋषिमुनि हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं।'' भारतीय -साहित्य वेदों का ऋणी है और रहेगा क्योंकि भारतीय साहित्य रचने के लिये आज भी योगवशिष्ठ की यह चेतावनी अशोकस्तम्भ की तरह हमारी साहित्य भूमि में लोहे की लाट की तरह गठी हुई यह कह रही है -

आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः
यद्यप्यधीताः सहषड्भिरङ्गैः
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडम् शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥

बिना चरित्रवान बने, न तो भारतीय साहित्य रचा जा सकता है न आगे रचा ही जायेगा - यह ही भारतीय-साहित्य-सृजन की पहली शर्त है जिसे हर समर्थ साहित्यकार मानता है चाहे वह बाल्मीकि हो, वेद व्यास हो, या रसिक बिहारी मंजुल ही क्यों न हो। भारतीय-साहित्य के भाष्यकार को भी महर्षि दयानन्द जैंसा पवित्र और पूज्य बनना पड़ता है। मनु कह ही चुके हैं :

'' वेदः स्मृतिः सदाचारःस्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम् ॥''

अर्थात् श्रुति, स्मृति, सदाचार, और अपनी आत्माको सन्तोष देना - यही साक्षात धर्म के चारलक्षण (पहचानः कसौटी) कहे गये हैं। जो साहित्यकार इनकी अक्षरशः अपने साहित्य में स्थापना करता है वही साहित्यकार मार्गदर्शक-साहित्यकार कहलाता है। क्योंकि-

'' धर्म्मेण गमनमूर्ध्वम्,गमनमधस्तात भवत्यधर्म्मेण।''

साहित्य का जन्म, चाहे वह किसी भी देश का हो, उस देश की परम्परा से ही होता देखा गया है, विश्व-साहित्य का इतिहास इसका प्रमाण है।

- रसिक बिहारी मंजुल
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली -८